Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 15, Issue No. 9, October-2018, ISSN 2230-7540

संत जगजीवनदास की दार्शनिक प्रासंगिकता

Neelam Kumari*

Department of Hindi

सार – अनेक पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओं तथा मनुष्यों से संसार का निर्माण हुआ है। सभी मनुष्य संसार में अपने-अपने ढ़ग से जीवन-निर्वाह करते है। लेकिन सभी व्यक्ति में अपने-अपने स्तर पर भिन्नता है। सभी प्राणी अपने अस्तित्व को बनायें रखने के लिए संघर्ष करते रहते है। मनुष्य पशु की अपेक्षा श्रेष्ठ है क्योंकि उसमें सोच-विचार तथा चिंतन का विशेष गुण है और इसी गुण के कारण व अन्य जीवो से भिन्न है। अपनी बुद्धि के कारण ही मानव विश्व की अन्य वस्तुओं को देखकर उनके स्वरूप को जानने की चेष्टा करता है। "मनुष्य का बुद्धि की सहायता से युक्तिपूर्वक तत्वज्ञान प्राप्त करने को 'दर्शन' कहते है।

----------X----------

जगजीवनदास की दार्शनिक प्रांसगिकता के विभिन्न आयाम -

1. गुरू महिमा –

कोई भी धर्म सम्प्रदाय जैसे ईसाई, पादरी, इस्लाम और सूफियो में उस्ताद, पीर व वैष्णवो, शैवों, शाक्तो के गुरू बौद्ध जैन सभी में गुरू के महत्व को निर्विवाद रूप में स्वीकार किया है। जगजीवन दास जी कहते है कि इस संसार में जिसको जो मिला है वह गुरू कृपा से हि मिला है। सतगुरू सर्वप्रथम शिष्य को अपनी इच्छा के अनुरूप साधता है और संवारता है उसके बाद ही ज्ञान का उपदेश देता है। गुरू ही शिष्य को पशुत्व से मनुष्य बनाता है। गुरू की कृपा के बिना अज्ञानता रूपी खत्म नहीं होता है। इसलिए जगजीवन दास गुरू उपदेश को अत्यंत दुर्लभ स्वीकारते है। बिना गुरू कृपा के वह संसार में भटकता रहता है। इस संबंध में संत जगजीवनदास जी कहते है -

"जगजीवन सोई करै जे करणी निज सार।

दादू गुरू की क्रिपा थै, हरि भजि उतरै पार।।"

ब्रहमा विचार:-

हिन्दी के निर्गुण काव्यधारा के कवियो ने निर्गुण निराकर ब्रहमा की उपासना की है। उन्होने अपने तत्कालिन समाज, धर्म, दर्शन, सम्प्रदाय को देखते हुए ब्रहमा को अनेक नामो से पुकारा है। परन्तु निर्गुण के स्वरूप को उन्होने निर्गुण, निराकार, अगोचर, अनंत और पूरे जगत: में व्याप्त माना है। संत जगजीवन दास जी का उपास्थ एक पर ब्रहमा परमात्मा ही है। उनका उसमें पूरा विश्वास है क्योंकि वह सबसे अधिक समर्थ व सबका मालिक है। -

गगन न परसै पवन न परसै न परसै नीर।

कहि जगजीवन तहां हरि थामे सकल शरीर।।

जगजीवन दास जी उस ब्रहमा को परम तेजोमय मानते है। एक स्थल पर वे कहते है - मेरा परब्रहमा कबीर का भी उपास्थ था मनसा, वाचा, कर्मणा मैं उसी की पूजा करता हूँ। संत जगजीवनदास ने उस परमतत्व को निरंजन, शून्य, सहज, ब्रहमा आदि नामों के अतिरिक्त राम, रहिमन, अल्लाह, सांई, ओंकार साहिब आदि नामो से पुकारा है।

बाजीगर बाजी रचि अलिफ इलम ओंकार।

कजि जगजीवन अगम हरि, उतपति मारै मार।।

जगजीवन का मानना है कि सारा संसार उसी से बना है, और उसी में विलीन हो जाएगा। संत जगजीवनदास का कहना है कि ब्रहमा संसार के कण-कण में विराजमान है। भक्ति व साधना के मार्ग पर चलकर ही जीवात्मा परमात्मा से एकाकार हो सकती है। नहीं तो यह माया में फंसकर रह जाएगी।

www.ignited.in

जीवात्मा:-

संत साहित्य में जीवात्मा शब्द का प्रयोग जीव के लिए हुआ है। संतो ने जीवात्मा को परमात्मा का अंश माना है। जीव के लिए आत्मा ही चैतन्य शक्ति है। अतः आत्मा-परमात्मा में कोई भेद नहीं है। संतो ने आत्मा को ब्रह्मा कहा है। अन्य संतो के समान संत जगजीवन ने भी जीव को ब्रह्मा का अंश माना है। तथा जीवात्मा के मायालिप्त होने व ब्रह्मा से बिछुड़ने की बात भी उन्होने कही है। जगजीवन जी का मानना था कि जो व्यक्ति अपने-आपको परमात्मा का अंश मानकर जीता है उसमें और प्रभु में कोई भेद नहीं होता है। आत्मा-परमात्मा की एकता की बात करते हुए जगजीवन जी कहते है। -

"जगजीवन रामजी एक कोई मांहि एक।

उत्पति परसी आतमां उपजी मांहि अनेक।।

संत जीवन दास जी कहते है कि मनुष्य माया में अन्धा हो गया उसे परमात्मा नजर नहीं आता। इसलिए सांसारिक मनुष्य से कहता हैं कि हे बावले मनुष्य तू इस शरीर पर क्यो घमंड कर रहा है यह तो ओंस की बूंद की तरह है पलभर में झड़कर गिर जाएगा। सच्चे मन से परमात्मा का नाम ले, वही इस भवसार से पार उतारेगा।

जगजीवन दास जी कहते है कि जीवन ब्रह्मा में अन्तर केवल कर्म बन्धनों का है। ब्रह्मा इन बन्धनों से मुक्त होता है, जबकि जीव इन कर्म बन्धनो में बंधा होता है।

जगत निरूपण:-

संतो की जगत विषय विचार को हम दो तरह से समझ सकते है। प्रथम सैन्द्धान्तिक व्यवस्था जिसमें संतो ने जगत् को बहुधा एक निषेधात्मक स्थिति का माना है। और दूसरा जिसमें संतो ने जगत को विधेयात्मक रूप, या कर्तव्य दोष माना है। संत जगजीवन दास के मन में भी जगत को उत्पति को लेकर स्वभाविक जिज्ञासा का भाव उत्पन्न हुआ। जब संत जगत की व्याख्या करते है तब वे सैन्द्धान्तिक रूप से उसको मिथ्या या ब्रह्मा पर आरोपित मानते है, किन्तु व्यावहारिक रूप में इसका परिणाम संतो ने कभी निष्क्रियता या उदासीनता अथवा उच्च श्रृंखलता नहीं होने दिया।

जगत को उन्होने कर्तव्य क्षेत्र माना और मनुष्य को अपने जीवन में कर्तव्य करते रहने का उपदेश दिया। निगुर्ण संतो की जगत संबंधी विचारधारा पर सांख्य शैव, वेदान्त इस्लाम की मान्यताएं आदि का प्रभाव देखा जा सकता है। वास्तव में जगत का अपना कोई अस्तित्व नहीं है बल्कि माया विछिन्न ब्रह्मा ही भिन्न भिन्न रूप से मिलता है। उपनिषदों में कहा गया है कि- "ब्रह्मा सत है। सर्वव्यापी, नित्य, अनन्त और शुद्ध चेतन है। वही सब की आत्मा है, उसी से जगत की उत्पति होती है।"

संत जगजीवनदास के मन भी जगत् की उत्पति को लेकर स्वभाविक जिज्ञासा का भाव अभिव्यक्त हुआ है। सृष्टि की रचना ईश्वर ने क्यों कि, उसका ऐसा करने में क्या प्रयोजन है। आदि प्रश्न उनके मन में उठते है। अपने प्रश्नों का उतर देते हुए संत जगजीवन दास कहते है कि ईश्वर ने जगत की रचना 'लीला' अथवा क्रीडा के लिए की है और इसका प्रयोजन लोकानुग्रह की भावना है। जगजीवन दास जी जगत् के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते है कि सर्वप्रथम ज्योति स्वरूप ब्रह्मा का प्रकाश प्रकट हुआ। उसके बाद उस प्रकाश से माया का विस्तार हुआ। सत-,रज-, तम की उत्पति, धरती-स्वर्ग, चांद, सूरज, तारे, हवा, पानी आकाश, पशु-पक्षी, धूप-छांव, शीत-उषा, नर-नारी, भूत प्रेत इत्यादि सभी कुछ स्थूल और सूक्ष्म जो भी दृष्टिमान जगत् है- एक पल में अपने गुप्त भण्डार खोलकर इस व्यापक संसार का निर्माण किया। संतजगजीवन कहते है कि इस जगत् का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। वह तो उस चेतन सता से प्रचलित होता है। मूलतः वह जड़ है और उस चेतन सता के सानिहय से ही उसमें स्फूरणशीलता प्रतीत होती है। जैसे सोते हुए स्वप्न में सत्य प्रतीत होने वाली वस्तुए जागने पर मिथ्याचार प्रतीत होती है वैसे ही अज्ञानता के कारण मनुष्य को सब सत्य दिखाई देता लेकिन जब उसे ब्रह्मज्ञान हो जाता है। मनुष्य को असत्य और सारहीन पं्रपंचो को देखकर भ्रमित नहीं होना चाहिए और अपनी लौ ब्रह्म में लगानी चाहिए। ब्रह्म, माया जगत में केवल ब्रह्म ही सत्य है बाकी दोनों असत्य है इसी कारण संसार में जो कुछ दिखाई दे रहा है वह सब माया का रूप है। इस सत्य को समझकर मनुष्य को अपना ध्यान परम सत्य अर्थात् ब्रह्मा की ओर लगाना चाहिए। लेकिन मनुष्य माया के चक्कर में फंसकर जगत् को सत्य मानने लगता है। इसी कारण जीवात्मा सांसरिक बन्धनों में जकड़ी रहती है। संत जगजीवन दास ने जगत् के नश्वर रूपों का वर्णन करने के लिए विविध प्रकार के उदाहरण देकर यह सिद्ध किया कि प्रभु भक्ति के बिना संसार के सभी प्राणी दुखी है क्योंकि केवल कि उन्हे इस जगत् और माया से पार ले जा सकता है।

पेरे वो कंकर चुगै चकोर पुगै अंगार

कहि जगजीवन हरि भगति नांउ चुगै बिज सार"।।

जगजीवन दास जी कहते है कि इस संसार की सभी जड़, चेतन स्थूल-सूक्ष्म सभी वस्तुएं नश्वर है लेकिन ब्रह्म नाम

www.ignited.in

सत्य है। यह जगत् तो धोखा मात्र है। संत मनुष्य को इन जगत के प्रपंचो से दूर रहने की सलाह देते है।

माया जब जगह है माया ही देवता है, माया ही मंदिर है, माया ही सेवा करती है। यह माया कनक-कामिनी का रूप धारण करके अंदर बैठ गई है।

"माया की मंडी स्त्री माया की मंडी दाम

जगजीवन हरि भक्ति की मंडी राम का नाम

माया आवै माया जाइ माया मागै माया खाइ

माया रोवै माया हंसे जीवन के मन माया बसै"

जगजीवन दास ने सांस्कृतिक आसक्तियों को माया कहा है। संसार का स्वरूप सेमर के फूल के समान हे। संत जगजीवन के माया संबंधी विचारों पर शंकर के अद्वैतवाद का प्रभाव देखा जा सकता है। अद्वैतवाद में विधा माया तथा अविधा माया, ये दो भेद किए हे। अविधा माया दुखः का मूल है जबकि विधा माया परमेश्वर के साथ में रहती है। जगजीवन दास ने माया को अविधा माया के रूप में स्वीकार किया है। इसे वे स्त्री कन्या डाइन, दुलहिन, ठगिनी, नागिन आदि नाम देते है। माया इस संसार में सब करवाती है। संत जगजीवन दास जी कहते है कि माया ने मनुष्य के हाथ में कंदमूल दे दिया है मनुष्य को उसका कारण नही पता लेकिन वह लगातार उसका भक्षण करता रहता है। माया के कारण मनुष्य में अहंकार आ जाता है, उसे अपने सिवा कोई नजर नहीं आता है। उस स्थिति में तो सृजनहार अर्थात् भगवान भी उसका कल्याण नही कर सकते है। माया के कारण वह संसार में केवल बुरी चीजो को देखता है। इसलिए जगजीवन दास जी कहते है कि संसार में माता-पिता, घर, भाई-बन्धु सब झूठे है। इनका त्याग करके स्वंय को पहचानो, इस झूठे शरीर पर दिखावा मत करो। तू सच्चे प्रियतम की खोज कर इससे तेरा कल्याण होगा।

संत जीवन दास जी कहते है कि संसार में कोई किसी का साथी नहीं है। सब अपने-अपने भार को लादे हुए संसार से जाते है। अर्थात् सब अपने-अपने कर्मो को भोगते है और संसार से चले जाते है। इस संसार में मनुष्य 'तेरा-मेरा' के चक्कर में फंसकर अपने परम धाम को भूल जाता है। अर्थात् सांसारिक मोहमाया में फंसा रहता है। इस क्षणभंगुर जीवन में मनुष्य का जीवन अस्थायी है। इस संसार में जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु निश्चित है। लेकिन वृद्धावस्था तक मनुष्य माया में उलझा रहता है और अपने कीमती जीवन को बेकार व शक्तिहीन बनाकर अनन्त इस संसार से चला जाता है पर वह संचेत नहीं होता है।

"राम राम हरि हरि अलख भाव भगति भजि ताहि

कहि जगजीवन चेत नर चितावणी चित चाही"

संत जगजीवन ने संसार को मिथ्या बताया है परन्तु वे कहते है कि इस संसार में रहकर साधना हारा मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। संत जगजीवन दास पर संत दादूदयाल का पूर्ण प्रभाव रहा। दादू की भांति उन्होने भी जगत् संबंधी सैन्द्धान्तिक विवेचन नही किया। उसकी जगत् संबंधी विचारधारा पर उपनिषद् गीता व शंकराचार्य, वैष्णव भक्तो, मध्यकालिन संत कवियो का प्रभाव देखा जा सकता है।

माया महिमा:-

भारतीय दर्शन में ब्रह्म के साथ-साथ माया का भी विशद् विवेचन किया, चिंतन-मनन किया है। संत जगजीवन दास जी कहते है कि सारी सृष्टि माया रूप में प्रतीत होती है सभी जगह माया का राज है कोई भी व्यक्ति माया के जाल से बच नहीं पाता है। यह मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करती है

वास्तव में देखा जाए तो सांसारिक सुख-दुख के बन्धनों को ही माया कहा जाता है। संसार में अनेक प्रकार की कामनाएं है और ममता है इन्हे माया कहा जा सकता है। माँ-बाप, भाई-बहन, पिता-पुत्र आदि अनेक तरह के बन्धन मनुष्य को पकड़े रहते है। तभी तो पुत्र के उत्पन्न होने पर महात्मा सिद्धार्थ ने कहा था - "आज मेरे बन्धन की श्रृंखला में एक कड़ी और गढ़ी हुई।"

इसलिए उन्होने अपने नवजात शिशु का नाम राहुल (बन्धन) रखा

प्राय: सभी संतो का चिंतन सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक न होकर व्यवहारवादी अधिक रहा। यही कारण है कि उन्होने माया को प्रसंगानुकूल अनेक नाम, रूप व विशेषण दिए है। उनके मत में माया नटनी, छलावा मृगजल, दलदल, मीठी-खांड, नागन चंचल आदि सब माया के रूप है। यह माया साधक के मार्ग में अनेक प्रकार की कठिनाईयां उत्पन्न करती है।

संत जगजीवन दास ने माया को मानस मारनी तथा आदमखोरी भी कहा क्योंकि यह मनुष्य को विभिन्न

जागतिक पदार्थों के आकर्षण में ही उलझा-उलझाकर मार डालती है। माया इतनी शक्तिशाली है कि संसार के सभी मनुष्य इसके आगे नतमस्तक है। माया के प्रपंचों में फंसे लोग भक्ति के मार्ग पर नहीं चल सकते। यह माया डाकिनी है पता नहीं इसने कितनों को खाया है। जगजीवन दास कहते है कि माया में मन लगाकर मनुष्य भगवान को भूल जाता है और वह इस बंधन में इस प्रकार उलझ जाता है, जैसे कांटेदार झाड़ियों में कोई बेल उलझ जाती है। माया अविश्वसीय एवं व्याभिचाहिणी है तभी तो संत जगजीवन दास जी कहते है कि यह बहुतो को मार डालती है और करोड़ों के साथ छल करती है।

लेकिन जगजीवन दास जी कहते है कि जो सच्चे साधक है उन पर माया का कोई प्रभाव नहीं होता, माया उनसे डरती है। यह संसारी लोगों के सिर पर रहती है मगर सच्चे संतो के पांव में रहती है, संसारी लोगों के लिए यह दुखकारी है पर संतो के लिए सुखकारी है। इस प्रकार संत जगजीवन दास ने अन्य संतो की ही भाँति माया को प्रभु-मिलन में बाधा पैदा करने वाली एवं जीव को दिशा करने वाले तत्व के रूप में चित्रित किया है। और जब मनुष्य के ऊपर से माया का बन्धन छूट जाता है तो वह ब्रह्म तुल्य हो जाता है।

मोक्ष:-

मोक्ष का शाब्दिक अर्थ है - छुटकारा मिल जाना। इसके लिए अन्य पर्याय का भी प्रयोग किया जाता है। जैसे: मुक्ति, निर्वाण, कैवल्य, मोक्ष आदि। सामान्यतः मोक्ष का अभिप्रायः जीवन की मुक्ति से है, आत्मा की स्वतंत्रता से है। मोक्ष को ज्ञान की सर्वोच्च स्थिति कहा जाता है।

भारतीय साधक पुरूषार्थ चतुष्तय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में मोक्ष को सबसे प्रमुख मानते है। मोक्ष वह साधन है जिसमें जीवात्मा माया या सांसारिक बन्धन छोड़कर परमात्मा में मिल जाती है। मुक्ति या मोक्ष का एक अर्थ भगवान का सानिहय प्राप्त करना भी है। संत जीवनदास आत्मा-परमात्मा के मिलन को मोक्ष मानते है। वह कहते है कि जीवात्मा परमात्मा के मिलन को मोक्ष मानते है। वह कहते है कि जीवात्मा परमात्मा में मिलकर उसी का स्वरूप बन जाती है और मैं तू का भेद मिट जाता है। जगजीवन दास जी कहते है कि यह सुन्दरी प्रियतमा के घर जाकर बस गई और पीहर नहीं जाना चाहती है क्योंकि वह उस अजब धाम को छोड़कर नहीं जाना चाहती है अर्थात् आत्मा-परमात्मा से मिलकर संपूर्णता को प्राप्त होती है और वह वापस नहीं आना चाहती है। यही मोक्ष की स्थिति है। लेकिन इस रास्ते में माया सबसे बड़ी बाधा है। यह आत्मा को परमात्मा से मिलने नहीं देती है। माया तो बड़े-बड़े सिद्ध साधको को अपने भुमजाल में उलझा लेती है फिर एक साधारण मनुष्य की क्या बात है। जो इस जंजाल को पार कर लेता है वह परम धाम पहुँच जाता है। इस कार्य में सतगुरू उनकी सहायता करते है। क्योंकि सतगुरू ही अपने ज्ञान-सपी प्रकाश से जीव को जगाकर वहां पहुँचाता है। संत जगजीवन दास ने भक्ति व मुक्ति की उपलब्धि का श्रेय गुरू को दिया है। जब तक व्यक्ति में अहंकार रहेगा आत्मा और परमात्मा में द्वैत खत्म हो जाता है तथा अद्वैत की स्थिति हो जाती है। जिस प्रकार हिम पिछलकर पानी बन जाता है। वैसे ही भक्त वहा जल में एकाकार हो जाता है।

संत जगजीवन दास की दार्शनिक प्रासंगिकता का समाजिक तात्पर्य संतो का लक्ष्य दर्शन को सुलझाना नहीं था; न ही उन्होने दार्शनिक होने का दावा किया। संतमत में दर्शन की एक परम्परा रही है। उन्होने वाणी के माध्यम से अपने विचारों को नैसर्गिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। उन्होने दर्शन संबंधी जो विचार दिए है वह पूरी तरह से उनकी मौलिक अनुभूतियाँ है। जो मानव की आन्तरिक शुचिता और नैतिक जीवन-दृष्टि के लिए एक औषधि का काम करती है।

संत जगजीवनदास का परम लक्ष्य था कि समाज में व्याप्त धार्मिक आडम्बर और कुरीतियाँ समाप्त हो। धर्म के नाम पर समाज में फैले मत-मतान्तर सब मिलकर एक हो, इसलिए उन्होने एक निर्गुण-निराकार, घट-घट वासी की परिकल्पना की संतो का निर्गुण-निराकार ब्रह्म जल-थल, आकाश, हर पदार्थ में व्याप्त है पूरा संसार उसी के आदेशानुसार चल रहा है। वह सृष्टि का पोषक है। निर्गुण संतो ने 'जीव मुक्त' व्यक्तियों की चर्चा करके आदर्श नागरिकता का आदर्श स्थापित किया है। जीवनमुक्ति वह होती है जो भेदभाव, अपने-पराये आदि से दूर हो संत युग पिता और युग निर्माता थे। इसलिए संत अपने युग के मनुष्यों की निष्क्रियता से अत्यंत दुखी थे। इन्होने सत्य को उजागर करने तथा कण-कण में उस ब्रक्र को खोजने की प्ररेणा की। उन्होने निर्गुण ब्रह्म को शब्द रूप माना है, जो घट-घट में बसता है और मनुष्य के सत्य का मार्ग प्रशस्त करता है। अतः कवि ने मनुष्यों को प्ररेणा दी है कि जो ब्रह्म तुम्हे देख रहा है, तुम भी उसे देखने में समर्थ बनो। शायद संतो की कहानी इतनी सहज थी कि उनके विचारों का प्रभाव आज तक देखा जा सकता है।

संतो की जीव-विषय धारणाएँ अत्याधिक स्पष्ट है। वह अपनी वाणी में सर्वत्र जीव की मुक्ति के प्रति चिंतित रहते है। यहाँ जीवन सम्पूर्ण मानव जाति का प्रतिनिधित्व करता है।

संतो का दर्शन कर्म सिद्धांत को विशेष महत्व देता है। वास्तव में वे मनुष्य को दुराचार छोड़कर धर्माचरण में लगाना चाहते है। कर्मफल के विधान को जान लेने पर मानव

www.ignited.in

स्वतः ही शुभ कर्म करने लगता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। अतः संतो का दृष्टिकोण, मानव-कल्याण में गहरी आस्था रखता है। यही नहीं संतो का दर्शन मानव-मानव के प्रति प्रेम की अलख जगाता है।

संतो ने अपनी दार्शनिकता के माध्यम से समाज में व्याप्त अनेकता के बीच एकता का उपदेश दिया संतो का दर्शन व्यक्ति परिष्कार तथा सामाजिक उत्कर्ष का प्रकाश पुंज है। संत जगजीवन पर अद्वैत का प्रभाव पड़ा, लेकिन उनके विचार उनकी व्याख्या मात्र नहीं है। वरन् उनका दर्शन ऐसा दर्शन जिसे जनमानस में विभिन्न परिस्थितियों को झेलते हुए अपने चित में रखा।

Corresponding Author

Neelam Kumari*

Department of Hindi

ashok58182@gmail.com